महात्मा बुद्ध का धार्मिक चिन्तन और उनका लोकवादी स्वरूप

डा. सियाशरण त्रिपाठी

प्राध्यापक (आधुनिक विषय)
श्री सांगवेद संस्कृत महाविद्यालय
नगहरिपुर, मुस्तफाबाद जौनपुर

इतिहास देश पर गर्व अनुभव करने का माध्यम होता है, और प्राचीन साहित्य हमारे गौरव के मानदण्ड होते हैं क्योंकि उनसे हमारी नाल जुड़ी हुई है, जिनसे हम संजीवनी ग्रहण कर सकते हैं। ऐसा ही एक साहित्य है–'बौद्ध साहित्य'। भारत मे धर्म शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में किया जाता रहा है। यह शब्द केवल 'मजहब' या अंग्रेजी के 'रिलीजन' शब्द का समानार्थक नही है। 'मजहब' या 'रिलीजन' साम्प्रदायिक विश्वासों और नियमों तथा उसके संगठनात्मक स्वरुप का ही अर्थ व्यक्त करते हैं, जबकि 'धर्म' शब्द नैतिकता, कर्तव्य, आध्यात्मिक चेतना और साम्प्रदायिक संगठन सबका समाविष्ट अर्थ प्रस्तुत करता है। इस प्रकार भारत में धर्म का व्यक्तिक और सामूहिक, नैतिक और साम्प्रदायिक, सामाजिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों पर व्यापक अधिकार है। यहाँ जीवन का कोई भी क्षेत्र धर्म की परिधि के बाहर नही माना गया है।

धार्मिक चिन्तन

बौद्ध साहित्य का अध्ययन करनें पर भारतीय दृष्टि से धर्म के तीन स्वरुप दिखायी पड़ते हैं।

1. सामान्य धर्म

जिसकी अभिव्यक्ति सदाचार और नैतिकता के रुप में होती है। सामान्य धर्म का स्वरुप किसी एक काल या एक देश की वस्तु नही है वह तो सार्वकालिक और सार्वदेशिक मानव धर्म है। इसको भारत में सनातन धर्म कहा गया है। बौद्ध साहित्य में विभिन्न धर्मो के आदर की बात कही गयी है। सामान्य धर्म प्रत्येक व्यक्ति को शील सम्पन्न बनाता है और विशेष रूप से सामाजिक नियन्त्रण का कार्य करता है। सामान्य धर्म मानव समाज का मेरूदण्ड है। भगवान बुद्ध जो एक क्रान्तिकारी विचारक, नेतृत्वकर्ता एवं समाज सुधारक थे, उन्होंने विशेष रूप से समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करनें के लिए सामान्य धर्म पर विशेष बल दिया है और कहा–'' जो विद्या और आचरण से युक्त है, वही मनुष्य श्रेष्ठ है।[1] मनुष्यों को आत्मद्वीप

(आत्मशरण अथवा स्वावलम्बी) होना चाहिए।[2] बौद्ध साहित्य में सामान्य धर्म का विशद वर्णन किया गया है।

2. साम्प्रदायिक धर्म

जिसका संचालन किसी विशेष धर्म प्रर्वतक या धर्म ग्रन्थ द्वारा निर्दिष्ट नियमों के आधार पर होता है। साम्प्रदायिक धर्मों में ब्रह्मण धर्म, तापस साम्प्रदाय, भक्ति साम्प्रदाय, शैव साम्प्रदाय, वैष्णव साम्प्रदाय, जैन साम्प्रदाय और बौद्ध साम्प्रदाय है। बौद्ध धर्म का उद्‌भव भारत के इतिहास में एक क्रान्तिकारी चरण है। बौद्ध धर्म के उद्‌भव से भारतीय चिन्तनपद्धति को एक नयी दिशा प्राप्त हुइ। बहुजन हिताय बहुजन सुखाय बौद्ध धर्म का मुख्य उद्देश्य रहा। बौद्ध साहित्य के माध्यम से इसके विभिन्न पक्षों को समझा जा सकता हैं। त्रिपिटक तथा अन्य बौद्ध साहित्य भगवान बुद्ध के उपदेशों एवं उनके द्वारा दिये गये सिद्धान्तों के प्रतिपादन में ही रचा गया। भगवान बुद्ध सभी सुखों को त्याग कर मध्यम मार्ग अपनाना ही हितकर समझा जिसे 'मध्यमा प्रतिपदा' कहते हैं।[3] सभी मार्गों मे अष्टांगिक मार्ग, सत्यों मे चार आर्यसत्य पद श्रेष्ठ हैं।[4] उन्होंने प्रथम उपदेश ऋषिपत्तनम मृगदाव, सारनाथ में दी जिसे 'धर्मचक्रप्रर्वतन' कहते हैं।

चार आर्यसत्य **1.** दुःख, **2.**दुःख समुदय, **3.** दुःख निरोध, **4.** दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा।[5]

अष्टांगिक मार्ग

1. सम्यक् दृष्टि **2.** सम्यक् संकल्प **3.** सम्यक् वचन **4.** सम्यक् कर्मान्त **5.** सम्यक् आजीव **6.** सम्यक् व्यायाम **7.** सम्यक् स्मृति **8.** सम्यक् समाधि।[6]

चार आर्य सत्यों को जानने वाला तथा अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करनें वाला व्यक्ति निर्वाण प्राप्त करता है। भगवान बुद्ध नें सभी मार्गों में अष्टांगिक मार्ग को श्रेष्ठ बताया है। चार आर्यसत्य पद श्रेष्ठ हैं यही मार्ग विशुद्धि का मार्ग है, इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नही है।[7] प्रज्ञा, शील, समाधि का बौद्ध साहित्य में विशेष उल्लेख हुआ है। निर्वाण की प्राप्ति इन्ही तीनों से सम्भव है तथा जगत के कष्टों का निवारण हो सकता है। मनुष्य अपनें जीवन के अंतिम उद्देश्य प्राप्त कर सकता है।[8]

पंचशील

1. जीव हिंसा से विरत रहना, **2.**चोरी से विरत रहना, **3.** व्यभिचार से विरत रहना, **4.** असत्य भाषण से दूर रहना, **5.** मद्यपान से दूर रहना। यह पाँचो आचरण पंचशील नाम से जाने जाते हैं।[9]

त्रिरत्न

बौद्ध धर्म में बुद्ध, धम्म और संघ को रत्न माना गया है। इसे त्रिरत्न भी कहा जाता है।[10]

1. बुद्धं शरणं गच्छामि,
2. धम्मं शरणं गच्छामि,
3. संघं शरणं गच्छामि।

3. लोक धर्म

लोक धर्म के अर्न्तगत सामाजिक जीवन तथा घरेलु व्रत, उत्सव और लोक विश्वासो पर आधारित रीति–रिवाज एवं पूजा–पाठ तथा अन्धविश्वास आदि आते हैं, जिनका किसी धर्म ग्रन्थों से सीधा सम्बन्ध नही होता फिर भी वे लोक जीवन में साम्प्रदायिक धर्म के सामान्य साँचे के भीतर ही परिगणित होते हैं। भगवान बुद्ध नें समाज मे फैली अन्धविश्वास व रूढ़ियों का विरोध व खण्डन किया, फिर भी वे समाज में विद्यमान रही। बौद्ध साहित्य में वर्णित लोक धर्म का जो स्वरूप प्रचलित था वह वैदिक समाज के लोक धर्म का ही विकसित रूप था। लोक धर्म का अन्धविश्वास एवं रूढ़ियाँ समाज में अपने मूल रूप में सदैव विद्यमान रही है।

बुद्ध व्यक्ति से समाज को उपर मानते थे और जहां व्यक्ति और समाज में से एक को चुनना हो वहां समाज को प्रधानता देते थे। यही कारण था कि लोक का प्रत्येक वर्ग चाहे राजा हो या रंक बुद्ध की शिक्षाओं को आत्मसात कर बौद्ध धर्म राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय प्रतिकूल परिस्थितियों की बाधाओं को पार कर बिना किसी भय के, बिना किसी के लालच के, बिना किसी बल प्रयोग के 'बुद्धं शरणं गच्छामि', 'धम्म शरणं गच्छामि', 'संघ शरणं गच्छामि' का उद्घोष करते हुए सम्पूर्ण विश्व का लोक धर्म बना।

लोकवादी स्वरूप

महात्मा बुद्ध के व्यक्तित्व की एक महत्वपूर्ण विषेशता उनका लोकवादी स्वरूप है। महात्मा बुद्ध ने बहुजन के हित और बहुजन के सुख के लिए धम्म की स्थापना की थी। महात्मा बुद्ध ने कालाम–सुत्त मे कहा, तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि वह बात परम्परागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्मग्रन्थ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि वह तर्क सम्मत है, न्याय सम्मत है, हमारे मत के अनुकूल है, कहने वाले का व्यक्तित्व आकर्षक है कहने वाला श्रमण, ब्राम्हण हमारा पूज्य है। किसी बात को विवेक की कसौटी पर कसकर देखो और यदि वह आपकी अनुभूति पर खरी उतरती है, वह तर्क संगत, बुद्धिसंगत, विज्ञानसंगत, न्यायसंगत और बहुजन के हित एवं सुख के लिए उपयोगी हो तभी मानो अन्यथा अस्वीकार कर दो। मैक्समूलर के अनुसार इतनी भय रहीत उत्तम कसौटी बौद्ध धर्म के अतिरिक्त और किसी धर्म में नहीं है।[11]

बुद्ध ने अपने संघ में आर्थिक समानता और जनतांत्रिक विधान को सर्वमान्य माना था। संघ में बुद्ध आर्थिक साम्यवाद चाहते थे और भिक्षु भिक्षुणियों के लिए वैसे ही नियम बनाये जिसके अनुसार शरीर पर कपड़े अस्तुरा, सुई, तलपात्र, जैसी तीन चार चीजें ही पुद्गलिक

(वैयक्तिक) हो सकती है शेष सम्मपत्ति संघ की मानी जाती थी।[12] बुद्ध ने संघ में पूर्ण साम्यवाद स्थापित करने का प्रयत्न किया और यह साम्यवाद उत्पादन में नहीं उपभोग में संघ को बुद्ध व्यक्ति से बड़ा मानते थे। महाप्रजापति गौतमी ने अपने हाथ से कात बुनकर बुद्ध के लिए कपड़ा तैयार किया, इसे मै बुद्ध को चीवर के लिए दूंगी। भेंट के लिए ले जाने पर बुद्ध ने प्रजापति से कहा–अच्छा है तुम इसे संघ को दे दो बुद्ध होने पर भी मैं व्यक्ति (पुद्गल) हूं व्यक्ति के लिए दान की अपेक्षा संघ के लिए दिए दान का अधिक पुण्य होता है प्रजापति गौतमी से बुद्ध ने संघ के लिए दान दिलवाया।[13] महात्मा बुद्ध का संघ वस्तुतः एक धार्मिक गणतंत्र था। समस्त सदस्यों के अधिकार समान थे। संघ में न कोई छोटा था और न बड़ा और महात्मा बुद्ध ने अपना कोई उत्तराधिकारी भी नियुक्त नहीं किया था।[14] संघीय कार्यों में प्रत्येक भिक्षु के अधिकार समान थे। संघ में फैसला बहुमत के आधार पर होता था जिसे यद्भूयसिक कहते थे।[15] प्रत्येक सदस्य स्वतंत्रतापूर्वक अपना मत (छन्द) देता था। निर्णय बहुमत से होता था। प्रत्येक प्रस्ताव तीन बार प्रस्तुत और स्वीकृत किया जाता था तभी वह अधिनियम बनता था। संघ के अधिवेशन के लिए कम से कम 20 भिक्षु सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य थी।[16] इसे बिना प्रत्येक अधिवेशन और अधिनियम अवैध समझा जाता था।

बुद्ध व्यक्ति से समाज को उपर मानते थे और जहां व्यक्ति और समाज में से एक को चुनना हो वहां समाज को प्रधानता देते थे। जब किसी भिक्षु को कर्तव्य की अवहेलना करते देखते तो वह कहते 'मोधं स रट्ठपिण्डं भुजति' अर्थात् वह व्यर्थ ही राष्ट के पिण्ड को खाता है।[17] बुद्ध किसी भी व्यवहार को वर्तमान और भविष्य की जनता में हितोहित की दृष्टि से देखते थे। यही कारण था कि लोक का प्रत्येक वर्ग चाहे राजा हो या रंक बुद्ध की शिक्षाओं को आत्मसात करने लगा। बुद्ध ने अपना उपदेश भी लोक भाषा पालि में दिया। महात्मा बुद्ध ने दुःख से जलते हूए लोक की सुरक्षा का उपयुक्त उपाय खोजने के लिए गृहत्याग किया था और लोक को दुःख से निवृत्त का मार्ग बाताया। बुद्ध अपने भिक्षुओं से कहते थे बहुजनहितार्थ, बहुजनसुखार्थ, लोक की अनुकम्पा के लिए, हित के लिए सुख के लिए विचरण करो।[18]

तथागत का धर्म लोकवादी था यह किसी वर्ग विशेष की सम्पत्ति नहीं था। यह एहिपरिन्सको[19] अर्थात् सबसे महता है 'आओ और देखो' यही धर्म का प्रत्यक्षवाद है। बुद्ध समता के प्रचारक थे और आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व इन्होंने अपनी आवाज जातपात के विरूद्ध उठायी। भगवान बुद्ध से पूर्व भी कुछ ऋषियों ने साधारण जन को ज्ञान की कल्याणकारी वाणी सुनाने की बात कही थी अर्थात् इयां वायं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः किन्तु वैदिक परम्परा मे शूद्र को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं प्राप्त था[20] शुद्र न संस्कार योग्य माना जाता था[21] और न ही यज्ञ का अधिकार होता था।[22] इसलिए हम कह सकते हैं कि सच्चे अर्थों में लोक जीवन का विकास वैदिक युग में नहीं क्योंकि लोक जीवन में शूद्र का भी जीवन सम्मिलित है। इसलिए

महात्मा बुद्ध ने कर्म को ही मनुष्य के मुल्यांकन का वास्तविक मापदण्ड माना था। महात्मा बुद्ध ने कहा–'जिस प्रकार आग जलाने के लिए लकड़ी का भेद नहीं देखा जाता उसी प्रकार निर्वाण के लिए मनुष्य में जात–पात और उंच–नीच का भेदभाव नहीं हो सकता।[23] उन्होंने शूद्र को लक्ष्य करके ही 'बहुजनहित' शब्द का प्रयोग किया था। यही कारण है कि मातंग, उपालि और सुनिति आदि शुद्रों ने बौद्ध धर्म में प्रतिष्ठा पायी थी। आम्बपालि वैशालि की गणिका थी और इसे समाज में निम्न स्थान प्राप्त था। गणिका को उचित स्थान देने वाले भी महात्मा बुद्ध थे। महात्मा बुद्ध ने लोक मे चारिका करते हुए उद्घोष किया कि जाति मत पूछो, कर्म पूछो जिससे चारों वर्णों का सहयोग धर्म को मिले। बुद्ध ने कहा जो जातिवाद मे फंसे हैं, गोत्र में फंसे हैं, एवं आहार विहार में फंसे हैं वह अनुपम विद्याचरण से दूर हैं।[24] बुद्ध वर्णव्यवस्था और यज्ञवलि के विरोधि थे, फिर भी कूटदन्त और सामदण्ड जैसे महाविद्वान ब्राम्हण भी बुद्ध के चरणों में झुके।

महात्मा बुद्ध के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर ही महात्मा गांधी ने कहा बुद्ध शान्ति के दूत और प्रेम के प्रचारक हैं। बौद्ध धर्म एक जीवन पद्धति और आचरण संहिता है। बुद्ध ने वर्णव्यवस्था, जातिवाद के सुदृढ़ किले को धराशायी करके लोक को समानता, एकता, राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता, करूणा, मैत्री, न्याय और विश्वबन्धुता का मार्ग प्रशस्त किया। लोक को मानवता का पाठ पढ़ाया। बौद्ध धर्म में राष्ट्रीय तथा अन्तराष्टीय प्रतिकूल परिस्थितियों की बाधाओं को पार कर बिना किसी भय के, बिना किसी के लालच के, बिना किसी बल प्रयोग के 'बुद्धं शरणं गच्छामि', 'धम्म शरणं गच्छामि', 'संघ शरणं गच्छामि' का उद्घोष करते हुए सम्पूर्ण विश्व का लोक धर्म बना।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची :–

1. दीघनिकाय, अम्बट्ठसुत्त, पृष्ठ 39–40।
2. दीघनिकाय, चक्कावत्ति सीहनादसुत्त, पुष्ठ 233।
3. बुद्धचरित 15/34, ललितविस्तर, 416/19।
4. धम्मपद नवसंहिता, विनोबा भावे, पृष्ठ 109।
5. संयुत्तनिकाय, दुक्ख सुत्त, पृष्ठ 389।
6. दीघनिकाय, महासतिपट्ठानसुत्त, पृष्ठ 117।
7. धम्मपद नवसंहिता, विनोबा भावे, पृष्ठ 109।
8. विशुद्धिमार्ग, निदानकथा, पृष्ठ 1।
9. महावस्तु भाग–3, 368/11–13।
10. ललितविस्तर, 217/18।
11. अंगत्तरनिकाय, 3.6.5।
12. घनिकाय, 2.3।

13. मज्झिमनिकाय, 3.4.12।
14. महापरिनिब्बाणसुत्त (दिघ0 2.3)
15. विनयपिटक, चुल्लवग्ग, 4 शमथ स्कन्ध।
16. महावग्ग, 9.4.1।
17. महामानव बुद्ध, राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ–41।
18. संयुत्तनिकाय, 4.1.4 विनयपिटक, महावग्ग।
19. वत्थूपमसुत्त (मज्झिमनिकाय) 1.1.6।
20. न चे शूद्रस्थ वेदाध्ययनमस्ति, उपनयन पूर्व त्वाद्वेदाध्ययनस्य उपनयनस्य च वर्णत्रयविषयत्वात् ब्रम्हसूत्रशंकरभाष्य 1/3/34, 1/3/38।
21. न च संस्कार मर्हति। मनुस्मृति–10/6।
22. तस्मात् शूद्रो यज्ञेअनवक्लप्तः। तैत्तिरीय संहिता 7/1/1/6।
23. प्रा0 भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, विमल चन्द्र पान्डेय, पृष्ठ–246।
24. दीघनिकाय 1.3।